दैनिक जागरण

आत्म साक्षात्कार प्रगति की राह खोलने वाली कुंजी है

किसान हितैषी उपाय

बीते कुछ समय से इस आशय के समाचारों को लेकर कोई हैरत नहीं कि केंद्र सरकार किसानों के लिए जल्द ही कोई रियायती योजना ला सकती है। ऐसी संभावना तबसे और बढ़ी है जबसे छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश और राजस्थान के विधानसभा चुनाव नतीजे आए हैं। इन चुनाव नतीजों के बाद यह धारणा बनी कि भाजपा को किसानों की नाराजगी महंगी पड़ी। पता नहीं भाजपा की पराजय में किसानों की नाराजगी का कितना हाथ रहा, लेकिन इससे इन्कार नहीं कि किसान अपनी हालत में कोई बुनियादी सुधार होता हुआ नहीं देख रहे हैं। केंद्र सरकार के तमाम वादों के बाद भी देश का औसत किसान अपने भविष्य को लेकर चिंतित है। यह चिंता हर हाल में दूर की जानी चाहिए और केवल इसलिए नहीं कि आम चुनाव नजदीक आ गए हैं, बल्कि इसलिए कि किसान सचमुच संकट से घिरे हैं। अगर किसानों का संकट दूर नहीं हुआ तो ग्रामीण अर्थव्यवस्था की हालत में भी सुधार नहीं होने वाला। किसानों का संकट खेती का भी संकट है। किसानों के संकटग्रस्त होने की एक बड़ी वजह यह है कि खेती की लागत बढ़ती जा रही है और उन्हें उनकी उपज का मुनाफे भरा मूल्य नहीं मिल पा रहा है। हालांकि केंद्र सरकार ने तमाम फसलों का न्यूनतम समर्थन मूल्य लागत का डेढ़ गुना देना तय कर दिया है, लेकिन उस पर कारगर तरीके से अमल नहीं हो पा रहा है। कहना कठिन है कि केंद्र सरकार किसानों के लिए किस तरह के प्रस्ताव पर विचार कर रही है, लेकिन यह आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है कि उसका प्रस्ताव किसानों को सचमुच राहत देने और साथ ही उनकी आमदनी बढ़ाने वाला होना चाहिए। इस प्रस्ताव में किसानों की समस्याओं का ठोस एवं दीर्घकालिक हल भी समाहित होना चाहिए। यदि ऐसा नहीं हुआ तो अर्थव्यवस्था का दोहरा नुकसान हो सकता है। एक तो राजकोषीय घाटा बढ़ेगा और दूसरे, किसान फिर से ऐसी स्थिति में पहुंच सकते हैं कि उनके लिए किसी और रियायती प्रस्ताव की मांग होने लगे। यह ठीक नहीं होगा कि सरकार राजकोषीय घाटा बढ़ने की चिंता में किसानों की समस्याओं का समाधान करने के लिए आगे न आए। सरकार को किसानों के लिए कुछ तो करना ही होगा, लेकिन कुछ करने के नाम पर उसे किसान कर्ज माफी की राह पर बिल्कुल भी नहीं जाना चाहिए। यह एक नाकाम और साथ ही अर्थव्यवस्था का बेड़ा गर्क करने वाला उपाय है। बेहतर हो कि सभी राजनीतिक दल यह समझें कि कर्ज माफी के उपाय से किसानों को लुभाकर चुनाव जीतने की कोशिश एक अनैतिक नीति है। विडंबना यह है कि जो राजनीतिक दल भली तरह यह जानते हैं कि कर्ज माफी किसानों की समस्याओं का सही हल नहीं वे भी इसी तरह की योजनाओं के सहारे चुनाव जीतने की कोशिश करते हैं। किसान कर्ज माफी की मांग बार-बार इसीलिए होती है, क्योंकि उससे किसानों की मूल समस्या का समाधान नहीं होता। यह अच्छा है कि मोदी सरकार किसान कर्ज माफी नीति को सही नहीं मान रही है, लेकिन यह चुनौती तो उसके सामने है ही कि किसानों को फौरी लाभ प्रदान करने के साथ ही उन्हें आर्थिक संबल भी देना है।

दल बदल पर सवाल

कोई भी नेता अपनी मनपसंद पार्टी में रहने के लिए स्वतंत्र है, लेकिन पश्चिम बंगाल में जिस तरह कुछ नेताओं ने नैतिकता को तिलांजली देकर दल बदल किए हैं उस पर सवाल उठना लाजिमी है। 2016 के विधानसभा चुनाव में 44 सीटें जीतकर कांग्रेस राज्य में मुख्य विपक्षी पार्टी बनी, लेकिन धीरे-धीरे कांग्रेस के एक दर्जन विधायक तृणमूल कांग्रेस में शामिल हो गए। अभी तक कांग्रेस विधायकों के ही पार्टी छोड़ कर तृणमूल कांग्रेस में शामिल होने का सिलसिला चल रहा था, लेकिन अब दूसरी विपक्षी पार्टी वाममोर्चा के विधायकों का रुझान भी तृणमूल कांग्रेस की ओर बढ़ने लगा है। मुर्शिदाबाद के जलंगी से माकपा विधायक अब्दुर्रज्जाक मंडल गुरुवार को तृणमूल कांग्रेस में शामिल हो गए। तृणमूल में शामिल होते ही उन्हें जलंगी तृणमूल कांग्रेस क्षेत्रीय चुनाव कमेटी का चेयरमैन बना दिया गया। मुर्शिदाबाद जिला तृणमूल कांग्रेस के पर्यवेक्षक एवं परिवहन मंत्री शुभेंदू अधिकारी ने मंडल को तृणमूल कांग्रेस में शामिल कराने की औपचारिकता पूरी करवाई। मंडल शनिवार को मुख्यमंत्री ममता बनर्जी की उपस्थिति में ब्रिगेड रैली में शामिल होंगे। वह तृणमूल कांग्रेस में शामिल होनेवाले वाममोर्चा के दूसरे विधायक हैं। इसके पहले दिसंबर में नवग्राम के विधायक कान्हाईलाल मंडल ने तृणमूल कांग्रेस का दामन थामा था। दल बदल कर विधायकों के तृणमूल कांग्रेस में शामिल होने से सबसे अधिक क्षति कांग्रेस को हुई है। कांग्रेस ने तो दल बदल विरोधी कानून के उल्लंघन करने को लेकर कोर्ट का दरवाजा भी खटखटाया है। इसके बावजूद विपक्षी दलों के नेताओं के तृणमूल में शामिल होने का सिलसिला बंद नहीं हो रहा है। अब तक कांग्रेस और वाममोर्चा के 40 विधायक तृणमूल कांग्रेस में शामिल हुए हैं। पिछले सप्ताह तृणमूल कांग्रेस ने अपने दो सांसदों अनुपम हाजरा और सौमित्र खान को पार्टी से निकाल दिया था। सौमित्र खान ने भाजपा का दामन थाम लिया। देर सबेर अनुपम हाजरा भी भाजपा में शामिल हो जाएं तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। किसी नेता के पार्टी से निकालने के बाद यदि वह दूसरी पार्टी में शामिल होता है तो यह अलग बात है, लेकिन एक पार्टी के टिकट पर चुनाव जीत कर किसी लालचवश दूसरी पार्टी में शामिल हो जाना उचित नहीं है।

गरीबी, बदनसीबी और आरक्षण

गोपालकृष्ण गांधी

आर्थिक आरक्षण का उद्देश्य सराहनीय है, लेकिन उसके समय का चयन सही नहीं। उसमें सामाजिक न्याय की नहीं, सियासी फायदे की गंध है

कोई तीस साल हुए। शायद उससे भी कुछ ज्यादा। दिल्ली से मैं रेलगाड़ी में जा रहा था। कहां जा रहा था, यह याद नहीं, लेकिन सफर साफ याद है मुझे, जैसे कि कल नहीं आज हुआ हो। क्यों? क्या हुआ था उस सफर में जो भुलाया न जाए? कोई हादसा? कोई तिलस्मी अनुभव? किसी ऋषि-मुनि का, संयोग से, जीवन बदल देने वाला दर्शन? नहीं, ऐसा कुछ नहीं! एक गाना। सिर्फ, एक गाना। गाना...? भीड़ थी उस नॉन एसी दूसरे दर्जे के रेल डिब्बे में। कंधे कंधों को रगड़ रहे थे। घुटने घुटनों को। बेहद गर्मी थी, घुटन थी। गर्म सांसों से डिब्बा जैसे तप रहा था। बाहर धूप, अंदर ताप। एक हिले तो दूसरा अकड़े। पर मजबूरी थी। सब हमसफर थे, अपनी-अपनी मुसाफिरी में, अपने किए-कर्म के बोझ को अपने बक्सों बिस्तरों में घुसेटे, लपेटे हुए। अपनी-अपनी उलझनों को अपने दिलों की गिरहों में दबोचे हुए। बर्थों के बीच जगह न बची थी, गलियारे नाम की कोई जगह न रही थी। सब खामोश थे, अपनी-अपनी फिक्र में सिमटे हुए।

अचानक...यकीन नहीं होता कि कैसे, लेकिन फिर भी इस तंगी में अचानक एक लड़की के गाने की आवाज आई। पहले सुर सुनाई दिया, शब्द नहीं। जैसे कि शास्त्रीय संगीत में आलाप! सुर मधुर था, दर्द-भरा। फिर उस सुर की स्रोत, उस गाने की रचयिता दिखी। उस भीड़ के बीच भी वह चल रही थी, धीरे-धीरे अपना एक रास्ता बना रही थी। वह कोई चौदह-पंद्रह साल की रही होगी। फटे-पुराने कपड़े पहने हुए थे उसने, मलिन लहंगा और कमीज के ऊपर जीर्ण ओढ़नी। उसके साथ उससे भी छोटा एक लड़का था, गालिबन उसका भाई। फटी-सी पतलून, ऊपर की देह निर्वस्त्र। तभी कुछ क्षणों में गाने के शब्द सुनाई दिए- देने वाले किसी को गरीबी न दे। मौत दे दे, मगर बदनसीबी न दे। राजेंद्र कृष्ण द्वारा रचित इस गीत को वह पूरी लय में गा रही थी और उसका भाई हाथ फैलाए लोगों से पैसे की आशा रखे चल रहा था।

गहरी सोच थी गाने में, इंतहा गहरी। गरीबी नसीब से जुड़ी होती है, लेकिन नसीब गरीबी से अलग भी हो सकता है। ये दोनों गरीब तो थे ही, साथ में बदनसीब भी। तिस पर भी इतनी बारीकी का ख्याल, इतना बहु-स्तरित विचार। लड़की गा रही थी उस गीत को पूरी समझ के साथ, दर्द के साथ। एक किस्म की विरक्ति के साथ कह रही थी वह- हूं गरीब, बदनसीब भी। तकदीर की मारी हूं साथ...जात की भी...औरत-जात की, और फिर मेरे घर की जात की भी...! मेरा दिमाग सुन्न हो गया। फर्ज करते हैं कि उस लड़की का नाम था पहेली और उसके भाई का नाम बच्चू। यह तीस साल पहले की बात है। आज पहेली पचास साल से ऊपर की औरत होगी। मां तो होगी ही, शायद नानी या दादी भी। या फिर... ! और बच्चू होगा न जाने कहां? अपनी बहन से तो निश्चय ही बहुत दूर? 45-50 साल का। जब-जब मैं इस घटना को, इस गाने को याद करता हूं तो मुझे अपने बचपन की एक और रेलगाड़ी की याद आती है। वह असली रेलगाड़ी नहीं, फिल्मी थी। पर मेरे दिमाग में ऐसे समा गई है कि भूले नहीं भूलती।

अवधेश राजपूत

फिल्म थी 1954 में वी. शांताराम की बनाई हुई। नाम था सुबह का तारा। उसमें लता मंगेशकर और तलत महमूद का गाया एक गीत है और सीन है रेल का डिब्बा। फर्स्ट क्लास। और कोई नहीं है उसमें। सिर्फ युगल दंपति...खिड़की से झांक रहे हैं दोनों। देख रहे हैं आसमान में चमकता हुआ सुबह का तारा। प्रदीप कुमार और जयश्री दोनों गा रहे हैं। बिल्कुल भिन्न है उसका रस, मेरे सीधे सुने हुए गाने से।

गया अंधेरा हुआ उजारा, चमका-चमका सुबह का तारा। टूटे दिल का बंधा सारा, चमका-चमका सुबह का तारा। सांस खुशी की तन में आई। अरमानों ने ली अंगड़ाई। जाग उठी उम्मीदें सारी। जाग उठी तकदीर हमारी। कहीं किसी ने दूर पुकारा, चमका-चमका सुबह का तारा...।

ये दोनों दृश्य मेरे दिमाग में घूमे जा रहे हैं जब से गरीबों के लिए 10 फीसद आरक्षण की घोषणा हुई है। क्या पहेली-बच्चू जैसों के लिए यह योजना सुबह का तारा बनेगी? क्या उससे उनकी तकदीर खुल जाएगी? शुरू में यह बात कह देनी चाहिए कि इस योजना का उद्देश्य सराहनीय है, श्रेष्ठ है, लेकिन उसके समय का चयन सही नहीं। उसमें सामाजिक इंसाफ की नहीं, सियासी फायदे की गंध है। अच्छे काम के लिए हर घंटा अच्छा कहा जाता है। मैं इस सत्य को नकार नहीं रहा हूं, लेकिन यह जरूर कहूंगा कि सत्यवाद और अवसरवाद में उतना ही ताल्लुक है, जितना चंदन और चूने में। राष्ट्रीय चुनाव से चार महीने पहले नहीं, चार साल पहले यह योजना आई होती तो ठीक रहता। आज इस योजना का तारा सिनेमाई लग रहा है। जैसे चुनाव के पर्दे पर वी शांताराम के पर्दे वाला वर्क का बनाया हुआ तारा लगा दिया हो।

बात सिर्फ सामयिकता की नहीं है। बात वास्तविकता की भी है। आरक्षण कागज पर नहीं होता। आरक्षण हकीकत पर होता है। कहां हैं नौकरियां, किधर हैं रिक्तियां? आज की पहेली और बच्चू को अगर कोई ढूंढ निकाल भी ले तो कहां भेजे जाएंगे वे? कौन उनको कहेगा बांग्ला में ऐशो, ऐशो..., या मराठी में ये, ये? या कन्नड़ में बा, बा...? कौन? आरक्षण नहीं, हिंद के गरीब को, उसकी पहेली और बच्चू को पद नहीं, पदार्थ चाहिए। खोखले वचन नहीं, ठोस मदद चाहिए। हां, अगर जॉब्स होते, आवंटन के लिए तो जॉब्स से बेहतर मदद और नहीं होती। लेकिन हैं नहीं जॉब्स। और जो थे, वे भी कम हो चले हैं।

पिछले कुछ सालों में मनरेगा के निर्वहन में खामियां रही हैं। गाफिलात और गोलमाल भी हुए हैं उसके तहत, लेकिन फिर भी उस योजना से देहात में हमारे बेरोजगार सह-नागरिकों को मदद मिली है। वैसी योजनाएं हमें अब नगरों में भी चाहिए। जो कि रोटी जैसी सच्ची हों।

मैंने इस 10 प्रतिशत आरक्षण के बारे में कहा कि उसका चुनाव से पहले लाया जाना ठीक नहीं। इस हकीकत के पीछे एक और विकट सत्य भी है। चुनाव होने को हैं, होंगे। राजनीतिक दल तैयार हो रहे हैं। कोई हारेगा, कोई जीतेगा, लेकिन आसमान के भी अपने तरीके हैं। मानसून फेल हुआ है। आगामी माह अकाल के हो सकते हैं। मप्र, छत्तीसगढ़, झारखंड, बिहार, उप्र, राजस्थान, मराठवाड़ा में अभी भी देखिए, पोखर सूखे पड़े हैं। दरख्त अपर्ण! खेत वीरान! पोस्ट-मानसून बारिश भी गुम है। कोई किसी से भी लड़े चुनाव में, कोई किसी से भी भिड़े, हम सब को सामना करना होगा कुछ ही सप्ताहों में एक अति-कठोर सूखे से। और जब नलों में पानी न होगा तो हम सब पहेली और बच्चू बन जाएंगे...गरीब हों या अमीर, सब अकाल नाम की बदनसीबी के शिकार। केंद्रीय और प्रांतीय सरकारों को आज एक मन से, तन-मन-धन से सियासी वचनों को भूलकर, त्यागकर, देश के सम्मुख एक नीति रखनी चाहिए पानी के उपयोग की, पानी की उपलब्धता और उसके इस्तेमाल की, जिसमें पेयजल सबसे पहले आए, पशु-योग्य जल दूसरे नंबर पर और कृषि जल तीसरी जगह पर हो। उसके बाद बाकी सब। यह अपरिहार्य है। इस पर ध्यान न दिया जाए तो हम सब समझिए देखते-देखते, बदनसीबी न दे...!

(वर्तमान में अध्यापन में रत लेखक राजनयिक एवं राज्यपाल रहे हैं)

response@jagran.com

नेतृत्व का बदलता चेहरा

महेश भारद्वाज

किसी जमाने में नेता के कहे को सिर माथे लगाने वाली जनता अब जमीनी हकीकत को समझने लगी है

एक सक्षम नेतृत्व की आवश्यकता और अहमियत सभी प्रकार के समूहों में होती है, लेकिन जैसे-जैसे समूह का आकार बढ़ता जाता है वैसे-वैसे नेतृत्व की जरूरत बढ़ने लगती है। शुरुआती दौर में आबादी कम होने के कारण प्रत्यक्ष लोकतंत्र संभव था, जिसमें जनता और जनप्रतिनिधि के बीच फासला ज्यादा नहीं था, लेकिन आबादी बढ़ने के कारण ईजाद हुई अप्रत्यक्ष लोकतांत्रिक व्यवस्था में नेतृत्व की भूमिका बढ़ी और शुरू हुआ जनता और उनके प्रतिनिधियों के बीच दूरी बढ़ने का सिलसिला। ऐसे में नेतृत्व के फर्क को महसूस किया गया। भारत जैसे विशाल आबादी वाले देश में तो नेतृत्व की जरूरत सदा से रही है। ऐसा नहीं है कि नेतृत्व की यह जरूरत केवल राजनीति में ही होती है, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक, व्यापारिक क्षेत्रों में भी इसकी बराबर की महत्ता है। इसलिए देश और समाज की वर्तमान दशा और दिशा को कई मायनों में उसे मिले नेतृत्व की नीयत और नीति का प्रतिबिंब मानने में कोई गुरेज नहीं होना चाहिए। एक लोकतांत्रिक व्यवस्था में नेतृत्व का महत्व केवल राष्ट्रीय और राज्य स्तर पर ही नहीं है, बल्कि गांवों, कस्बों और शहरों मे भी उसकी उतनी ही अहमियत है। जिस देश में संसाधनों की खींचतान हो वहां क्षेत्र विशेष का विकास उसे मिले नेतृत्व पर बहुत निर्भर करता है। इसलिए नेतृत्व की काबिलियत और गुणवत्ता बहस होना स्वाभाविक है। आज जनता भी गुण-दोष के आधार पर अपने नेतृत्व को जांचने-परखने लगी है। इसी तरह महत्वाकांक्षी आम लोग भी विकल्प और दावे पेश करने लगे हैं। मौजूदा नेतृत्व द्वारा इसका प्रतिकार स्वाभाविक है।

नेतृत्व के पाश्चात्य सिद्धांत का सहारा लेकर हमारे देश में एक समय यह प्रचारित किया गया कि नेता पैदा होते हैं, बनाए नहीं जा सकते। इस अभिजात्य दृष्टिकोण के पैरोकारों ने जनता के दिमाग में यह बैठाने की भी पूरी-पूरी कोशिश की कि नेतृत्व कुदरत द्वारा प्रदत्त जन्मजात प्रतिभा है, जिसे सिखाया नहीं जा सकता। इस सिलसिले में यहां तक कहा गया कि नेतृत्व के गुण व्यक्ति के जीन में होते हैं जिन्हें बाहर से स्थापित नहीं किया जा सकता। ऐसे प्रचार के जरिये नेतृत्व की संभावनाओं को सुनियोजित तरीके से चंद लोगों तक सीमित रखने के प्रयास हुए। एक सोची-समझी रणनीति के तहत नेतृत्व के दायरे को चुनिंदा लोगों और खास वर्ग तक सीमित रखने की कोशिश हुई। इसके चलते बाहर से उठने वाली ज्यादातर आशाओं-आकांक्षाओं को हतोत्साहित होना पड़ा। नेतृत्व को जन्मजात विशेषता बताकर सामान्य पृष्ठभूमि के लोगों को रोका गया, पर नई प्रतिभाओं द्वारा लगातार चुनौती पेश किए जाने के कारण नेतृत्व की अभिजात्यवादी अवधारणा क्षीण पड़ने लगी और धीरे-धीरे अभिजात्य नेतृत्व का तिलस्म भी टूटने लगा और कीचड़ में भी कमल खिलने लगे। सूचना के युग में सामान्य पृष्ठभूमि के लोग भी शीर्ष पर पहुंचने लगे हैं। राजनीति के साथ-साथ उद्योग, व्यवसाय, कला, सिनेमा, अध्यात्म, प्रशासन इत्यादि क्षेत्रों के द्वार भी जनसामान्य के बीच से निकले लोगों के लिए खुलने लगे हैं। इसमें सोशल मीडिया की काफी भूमिका रही है। अपने नेता के बारे में ज्यादा से ज्यादा जानने की लंबे समय से चली आ रही ज्ञान पिपासा को शांत करने में सोशल मीडिया ने बड़ी भूमिका अदा की है।

अभिजात्य दृष्टिकोण के विपरीत सोच रखने वाले समाजशास्त्रियों ने भी व्यवहारपरक अवधारणा के आधार पर दलील दी कि नेतृत्व भी एक विधा है और उसे भी अन्य विधाओं की तरह सीखा जा सकता है। वास्तव में अच्छे और कुशल नेतृत्व के बारे में कही जाने वाली बातें प्रशासन, व्यापार, कला, खेल और जीवन के अन्य क्षेत्रों में उतनी ही प्रासंगिक हैं, लेकिन मौजूदा चुनाव केंद्रित राजनीति के दौर में इसे राजनीति से जोड़कर ज्यादा देखा जाता है। चुनावी मैदान में नेतृत्व की परख अच्छे से और जल्दी हो जाती है। किसी जमाने में नेता के कहे को सिर माथे लगाने वाली जनता अब जमीनी हकीकत को समझने लगी है और यह जानने की कोशिश करती है कि जो आश्वासन दिया जा रहा है वह कैसे पूरा होगा? नेतृत्व में अब मौलिकता, नएपन, विजन को भी खोजा जाने लगा है। सार्वजनिक जीवन में सक्रिय लोगों की जनता के बीच छवि अब बहुत महत्वपूर्ण हो चली है। कुछ लोग जनता के बीच अपने बारे में बेहतर धारणा बनाने में कामयाब रहते हैं, परंतु कुछ ऐसे भी लोग हैं जो अपने बारे में बनी हुई असत्य धारणाओं को भी तोड़ने में विफल रहते हैं। ये या तो अक्षम होते हैं या फिर इसे जरूरी नहीं समझते। ऐसे नेताओं को जनता नकार देती है। चुनाव लड़ने वाले लोगों से अब यह अपेक्षा की जाती है कि उनमें नेतृत्व क्षमता भी हो। ऐसे में यह आवश्यक है कि नेतृत्व करने वाले यह समझें कि उनके बारे में आम जनता की धारणा बदल रही है।

(लेखक आइपीएस अधिकारी हैं)

response@jagran.com

तथ्य-कथ्य

ऊर्जा

संबंध

हम सब सामाजिक व्यवस्था में जीते हुए पहचान प्राप्त करते हैं। सामाजिक जीवन में पारस्परिक संबंधों का विशेष महत्व होता है। हर संबंध मन एवं भाव से संबद्ध है। इन सभी संबंधों को दायित्व बोध की मथानी से मथने पर स्नेह, आत्मीयता एवं माधुर्य का नवनीत प्राप्त होता है, जिससे आचरण में सहजता, सहिष्णुता, सामंजस्य और क्षमाशीलता आदि गुण विकसित होते हैं। संबंधों के संदर्भ में दायित्व पूर्ति के समय बुद्धि का अत्यधिक प्रयोग प्रतिकूल परिस्थिति को उत्पन्न करता है। अहं की उत्पत्ति के कारण अनुकूलन या सामंजस्य का अभाव सामने आता है और तनाव की स्थिति प्रकट होती है। तनाववश हम स्वयं को आहत, अकेला एवं असुरक्षित महसूस करने लगते हैं और दायित्व बोध को भूलकर अधिकार प्राप्ति की लड़ाई में शामिल होने से स्वयं को रोक नहीं पाते।

संबंधों के प्रति दायित्व बोध को नकारने से नकारात्मक विचार, बौद्धिक अशांति और शारीरिक अस्वस्थता के साथ एक अन्य परिस्थिति के उत्पन्न होने का खतरा भी सदा बना रहता है। इस परिस्थिति में आदान-प्रदान, विचार-विनिमय और सेवा-सम्मान जैसे सद्गुणों की प्रतिक्षण हत्या होती है। संप्रति ऐसे उदाहरण वातावरण को प्रदूषित कर रहे हैं, परंतु कुछ प्रश्न ऐसे हैं, जिन पर शांत मन से विचार करके संबंधों के प्रति दायित्व की क्षमता को ऊर्जावान बनाया जा सकता है। जैसे-क्या हम अपना दायित्व निभाने से छोटे हो जाते हैं? क्या हमें अपने व्यवहार से दूसरों को कष्ट देने का अधिकार प्राप्त है? क्या दूसरे को हानि पहुंचाकर सुखी हुआ जा सकता है? क्या स्वार्थों की पूर्ति के लिए ही संबंधों का महत्व है? यदि ऐसा नहीं है तो इन सभी प्रश्नों का केंद्रीय समाधान है-प्रत्येक संबंध के उत्तम भावों की स्वीकार्यता और उनकी मधुर-प्रतीति। अधिकार-प्राप्ति की जल्दबाजी के स्थान पर दायित्व बोध की गरिमा का सम्मान। ऐसा होने पर पारस्परिक विश्वास एवं सहयोग का संबल प्राप्त करके जीवन को सच्चे अर्थों में पूर्ण किया जा सकता है। भौतिक सुखों की प्राप्ति की आकांक्षा दिखावा मात्र है। इसलिए हरसंभव प्रयप्न करके आत्म-संतोष प्राप्ति की दिशा में उन्मुख होना मनुष्यता की पहचान है और इसके लिए 'संबंधों के प्रति दायित्व बोध' का मार्ग उत्तम मार्ग है।

डॉ. सुरचना त्रिवेदी

गायों की अग्निपरीक्षा!

फिर से

कर्नाटक में पिछले कई वर्षों से एक त्योहार मनाया जाता है। इसमें गायों को आग पर से गुजरना होता है

भारत इतना बड़ा देश है कि उत्तर से दक्षिण जाते-जाते या पूरब से पश्चिम आते-आते किसी एक चीज के बारे में बातें, धारणाएं और रिवाज पूरी तरह बदल जाते हैं। गाय उनमें से एक है। गाय को पूज्य मानकर उसकी रक्षा करने वालों की हिंसा हमारे सामने है तो इसी देश में जल्लीकट्टू को लेकर तमिलनाडु वाली जिद भी है। देश में जहां बीफ का लेकर संवेदनाएं अपने उफान पर हैं तो पूर्वोत्तर में बीफ खाने में शुमार है। अब ताजा विवाद कर्नाटक की वर्षों पुरानी रीति को लेकर सामने आया है। कर्नाटक में पिछले कई सालों से मकर संक्रांति पर एक त्योहार मनाया जाता है-किच्चु हाईसुवुदु। यह खास त्योहार गायों की अग्निपरीक्षा जैसा लगेगा। इस त्योहार में गायों और उनके मालिकों को आग पर से गुजरना होता है। कहने को यह आग एक फिट ऊंची ही होती है और मुश्किल से 2-5 सेकंड में गुजर जाना होता है, लेकिन अगर देखा जाए तो इसमें जलने का अहसास तो बेजुबान जानवरों को होता ही है।

इस त्योहार को फसल काटने के सीजन में मनाया जाता है। मकर संक्रांति के दौरान यह त्योहार दो दिन का होता है। पहले दिन गायों-बैलों को खूब खिलाया-पिलाया जाता है। उन्हें खुले में छोड़ दिया जाता है। दूसरे दिन यानी संक्रांति के दिन उन्हें खूब सजाया जाता है। अलग-अलग रंगों से, घंटियों से, मोरपंख से, उन पर रंग-बिरंगे कपड़े भी डाले जाते हैं और फिर उन्हें शाम होते-होते आग पर से कुदवाने की तैयारी की जाती है।

इस त्योहार के पीछे का तर्क बेहद रोचक है। कुछ कहते हैं कि यह सदियों से मनाया जाता रहा है और यह हमारी संस्कृति का हिस्सा है और कुछ कहते हैं कि ऐसा इसलिए किया जाता है ताकि गायों-बैलों के पैरों में कोई संक्रमण न हो सके। यह कर्नाटक के मैसूर के ग्रामीण इलाकों और मांड्या जिले में मनाया जाता है। सुदूर गांवों में होने वाला यह त्योहार किस तरह से गायों के लिए अच्छा है यह समझा नहीं जा सकता। पहली बात तो यह कि इस त्योहार को सदियों से मनाया जा रहा है। यह कितना पुराना है, किसी को नहीं पता, लेकिन चलिए मान लिया कि 100 सालों से भी मना रहे हैं तो भी उस समय गायों-बैलों को बचाने के लिए इतने साधन नहीं थे। उन्हें जल्दी संक्रमण हो जाता था। उस समय यह प्रथा एक इलाज के तौर पर ही देखी जाती थी, पर उस समय तो इंसानों के इलाज के लिए भी बड़ी मुश्किल होती थी। जब इंसानों के इलाज का तरीका बदल गया तो गायों के इलाज का तरीका क्यों नहीं? दुनिया भर के इंजेक्शन, दवाइयां उपलब्ध हैं तो फिर उनका इस्तेमाल क्यों नहीं? जानवरों को दर्द देना कहां तक सही है?

यह सिर्फ एक विश्वास के तहत किया जाता है कि मवेशियों को इससे कोई बीमारी नहीं होगी और भगवान प्रसन्न होंगे और सुख-समृद्धि लाएंगे, लेकिन अगर देखा जाए तो ऐसे रिवाज की जरूरत ही अब खत्म हो चुकी है। जल्लीकट्टू, मुर्गों की लड़ाई और किच्चु हाईसुवुदु जैसे रिवाज सिर्फ जानवरों पर अत्याचार जैसा ही काम करते हैं। आखिर कब तक हम पुराने रिवाजों का बोझ यह समझकर ढोते रहेंगे कि जो सदियों से चला आ रहा है उसे अभी भी चलते रहना चाहिए। सच पूछिए तो ऐसी रूढ़ियों को दूर करने के लिए ही लोगों को आगे आना चाहिए।

(साभार : आइचौक.इन में श्रुति दीक्षित)

सही फैसला

जगमोहन सिंह राजपूत ने अपने आलेख 'एक अव्यावहारिक निर्णय का अंत' में जिन बातों का उल्लेख किया है वे पूरी तरह से सही हैं। वास्तव में कक्षा 8 तक फेल न करने वाली नीति ने समाज के निम्न मध्यम वर्ग एवं अत्यंत गरीब लोगों के बच्चों का बहुत बड़ा नुकसान किया है। ऐसे लोग अपने बच्चों के लगातार पास होते रहने से उनकी प्रगति के प्रति संतुष्ट रहते हैं और दूसरी ओर बच्चा यह सोच कर कि पास तो होना ही है पढ़ाई में ध्यान नहीं देता है। सबसे ज्यादा लापरवाह शिक्षक हो जाते हैं कि पढ़ाएं या न पढ़ाएं बच्चे पास हो ही जाएंगे। लेखक का यह कहना शत प्रतिशत सत्य है कि कक्षा 8 तक की गुणवत्तापूर्ण पढ़ाई आगे की शिक्षा को प्रभावित करती है। फेल न करने वाली नीति का अंत करने के लिए सरकार का धन्यवाद।

राघवेंद्र त्रिपाठी, गोंडा

क्षेत्रीय भाषा के साथ हिंदी

भारत के अनेक राज्यों में अलग-अलग भाषा और संस्कृति का चलन है। शिक्षा विभाग द्वारा प्रत्येक राज्य में अलग-अलग विषय और भाषा का चयन किया जाता है, लेकिन भारत में विविधता होने के बावजूद हिंदी भाषा को देश की सबसे अधिक प्रचलित भाषा का सम्मान मिला हुआ है। हालांकि दक्षिण के राज्यों में हिंदी का विरोध होता रहा है। इस भाषा विवाद से देश के सभी राज्य आपस में जुड़ नहीं पाते हैं। शिक्षा विभाग द्वारा विदेशी भाषा अंग्रेजी और क्षेत्रीय भाषा द्वारा बच्चों को शिक्षा दी जाती है, लेकिन हिंदी का ज्ञान न होने से दक्षिणी और पूर्वी राज्यों के व्यक्ति अन्य राज्यों में जाने से कतराते हैं। हिंदी का ज्ञान न होने से सभी राज्यों की संस्कृति और

मेलबाक्स

सभ्यता का आदान-प्रदान नहीं हो पाता है। अतः प्रत्येक राज्य के शिक्षा विभाग द्वारा प्रत्येक स्कूल में अंग्रेजी और क्षेत्रीय भाषा के साथ-साथ हिंदी भाषा को भी अनिवार्य कर देना चाहिए। अन्यथा भावी पीढ़ी द्वारा हिंदी भाषा से अनजान होने से भारतीय संस्कृति और सभ्यता के विलुप्त होने का खतरा हो सकता है। विदेशी भाषा के साथ-साथ भारतीय भाषा हिंदी को भी पूरे भारत में हर व्यक्ति को जानना आवश्यक है। इससे सभी भारतवासी एक दूसरे से आसानी से जुड़ सकेंगे।

skcbe9@gmail.com

विवाद में सीबीआइ

जब कोई मामला उलझ जाता है तब देश की सबसे बड़ी जांच एजेंसी सीबीआइ से जांच कराने की मांग की जाती है। लेकिन आजकल यह एजेंसी खुद विवादों में है। विवाद भी ऐसे कि सुलझ नहीं पा रहे हैं। इससे इसकी साख पर चोट पहुंच रही है।

मोहम्मद आसिफ, जामिया नगर, दिल्ली

मधुमेह रोग

आज के समय में मधुमेह की बीमारी आम बात है। स्थिति यह है कि सिर्फ अधिक उम्र वाले ही नहीं, बल्कि युवा व बच्चे भी इसकी चपेट में आ रहे हैं। यह एक ऐसा रोग है जो शरीर को धीरे-धीरे खोखला बना देता है। यदि इसे नजरअंदाज किया जाए तो ये शरीर के दूसरे अगों को निष्क्रिय कर देता है। इस रोग की भयावहता और युवा पीढ़ी को सुरक्षित रखने के लिए लोगों को इससे बचाव के उपाय करने चाहिए। सरकार को भी चाहिए कि वह इस रोग की रोकथाम के लिए कारगर कदम उठाए।

संध्या, आंबेडकर कॉलेज, डीयू

महंगाई पर रोक जरूरी

दिल्ली में पेट्रोल की कीमतें लगातार बढ़ रही हैं। डीजल की कीमतों में वृद्धि के कारण आने वाले दिनों में महंगाई और बढ़ सकती है, क्योंकि खाद्य एवं कृषि उत्पादों के परिवहन के लिए वाहनों में डीजल का ही प्रयोग होता है। ऐसे में खानपान की वस्तुएं महंगी हो सकती हैं। सरकार को चाहिए कि दैनिक आवश्यकता वाली वस्तुओं की कीमतें एक सीमा से अधिक न बढ़ने पाएं।

अश्मिता, आंबेडकर कॉलेज, डीयू

दहशत में रेलयात्री

रेलयात्रा का अपना अलग ही रोमांच है, किंतु वर्तमान समय में असामाजिक तत्वों के चलते यह सफर असुरक्षित होता जा रहा है। एक के बाद एक वारदातों ने रेलवे प्रशासन पर सवालिया निशान खड़े कर दिए हैं। रेलवे प्रशासन इन्हें हल्के में लेता है, नहीं तो एक ही रूट पर एक के बाद एक डकैती कैसे हो सकती है? इन घटनाओं के कारण रेलयात्रियों में दहशत है।

kumari.pooja52@gmail.com

इस स्तंभ में किसी भी विषय पर राय व्यक्त करने अथवा दैनिक जागरण के राष्ट्रीय संस्करण पर प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिए पाठकगण सादर आमंत्रित हैं। आप हमें पत्र भेजने के साथ ई-मेल भी कर सकते हैं।

अपने पत्र इस पते पर भेजें :
दैनिक जागरण, राष्ट्रीय संस्करण,
डी-210-211, सेक्टर-63, नोएडा
ई-मेल : mailbox@jagran.com

संस्थापक-स्व. पूर्णचन्द्र गुप्त. पूर्व प्रधान संपादक-स्व.नरेन्द्र मोहन. संपादकीय निदेशक-महेन्द्र मोहन गुप्त. प्रधान संपादक-संजय गुप्त, जागरण प्रकाशन लि. के लिए: नीतेन्द्र श्रीवास्तव द्वारा 501, आई.एन.एस. बिल्डिंग, रफी मार्ग, नई दिल्ली से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा डी-210, 211, सेक्टर-63 नोएडा से मुद्रित, संपादक (राष्ट्रीय संस्करण) -विष्णु प्रकाश त्रिपाठी*
दूरभाष : नई दिल्ली कार्यालय : 23359961-62, नोएडा कार्यालय : 0120-3915800, E-mail: delhi@nda.jagran.com, R.N.I. No. DELHIN/2017/74721 * इस अंक में प्रकाशित समस्त समाचारों के चयन एवं संपादन हेतु पी.आर.बी. एक्ट के अंतर्गत उत्तरदायी। समस्त विवाद दिल्ली न्यायालय के अधीन ही होंगे। हवाई शुल्क अतिरिक्त।